**National Journal of Multidisciplinary Research and Development**
**ISSN: 2455-9040**
**Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.nationaljournals.com**
**Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 613-617**

# 19वीं सदी में प्रारम्भ सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों में भारतीय प्रबुद्ध वर्ग का योगदान

**अंजना**
शोध–छात्रा, मध्यकालीन, आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

## प्रस्तावना

19वीं सदी की प्रारम्भ में महिलाओं की दशा के बारे में 'प्रतिमा अस्थाना' का अग्रलिखित विचार अत्यधिक समीचीन प्रतीत होता है। इस अध्याय के प्रारम्भ में उनके इन शब्दों का उल्लेख महत्वपूर्ण है। उनके शब्दों में ''भारत में 18वीं सदी के अन्त तक मुगल साम्राज्य के पतन काल में सम्पूर्ण देश में राजनीतिक उथल–पुथल हुई। जिसका प्रभाव तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर पड़ा, परिणामतः नारी की पतनोन्मुख दशा को और भी अधिक सोचनीय स्थिति तक पहुँच चुकी थी। अधिकांश महिलायें उन मूक पशुओं के सदृश थी, जिनका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं था और जो अत्याचार किये जाने पर भी आवाज नहीं उठा सकती थीं। उनकी भावनाओं, इच्छाओं व सम्भावनाओं एवं शक्तियों का कोई महत्व नहीं था, स्वयं नारी भी अपनी स्थिति के प्रति अज्ञानता का शिकार थी एवं इस दयनीय स्थिति को उसने अपनी नियति माना।''[1] 19वीं सदी के आरम्भिक काल में समाज में नारी की स्थिति मानवीय आधार पर न होकर अपितु उपभोग वस्तु के सदृश थी, क्योंकि ''19वीं शताब्दी के पूर्व संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि व्यक्ति, समाज तथा राज्य की अपेक्षा धर्म प्रमुख माना जाता था।''[2] वस्तुतः समाज अपनी प्रगतिशीलता खो चुका था। परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। 19वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में भारत के बुद्धिजीवी वर्ग में एक नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जो भारत के लिए आधुनिकता की प्रथम किरण लेकर अवतरित हुआ। इस नवीन चेतना से प्रेरित होकर अनेक महान विभूतियों ने सामाजिक–धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में सुधार के लिए प्रयत्न किये।

19वीं सदी के सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरुप और व्यापकता की दृष्टि से इस आन्दोलन को संघर्षपूर्ण भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण घटना माना जाता है, जिसने न केवल भारतीय समाज की जड़ता को समाप्त किया अपितु देश के जन–जीवन को भी झकझोर दिया। इससे जहाँ एक ओर सामाजिक–धार्मिक क्षेत्र में सुधार हुआ वहीं दूसरी ओर इसने भारत के गौरवशाली अतीत को उजागर कर भारतीयों के मन में आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव की भावना जागृत करने की कोशिश की। जिसे भारत के समसामयिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बौद्धिक चिन्तन की स्वतंत्रता से ही नहीं अपितु असमानता, शोषण और अत्याचार मुक्ति से भी जोड़ा जाता है। 19वीं शताब्दी को भारतीय इतिहास का पुनर्जागरण युग भी कहा जाता है, जिसका स्रोत मुख्यतः पाश्चात्य सम्पर्क का प्रभाव, समाचार पत्रों का योगदान, साहित्य का प्रभाव, ईसाई धर्म प्रचारकों से प्रेरणा, समाज में एक नवीन मध्यम वर्ग का विकास एवं यातायात के साधन तथा अनेक उद्योगों व तकनीकों का उदय था, जो भारतीय समाज में परिवर्तन के प्रमुख कारक बने।[3]

हालाँकि 19वीं सदी में हुए सामाजिक–धार्मिक सुधारों अथवा पुनर्जागरण के तहत भारतीय महिलाओं के सन्दर्भ में मुख्य क्षेत्र केवल समकालीन कुरीतियों एवं रुढ़ियों को समाप्त करना तथा महिला शिक्षा को बढ़ावा देना था। भारतीय समाज–सुधारकों द्वारा किये गये प्रयासों एवं कार्यों का वर्णन किया है। भारत में सुधारकों की दृष्टि सर्वप्रथम धर्म पर पड़ी। चूँकि धर्म समाज से जुड़ा है। अतः धार्मिक वाह्य आडम्बरों को चुनौती दी गयी एवं इसमें सुधार कर उन्हें समसामयिक सन्दर्भ में उपयोगी एवं युक्तिसंगत बनाने का प्रयास शुरू हुआ। ''धर्म सुधार का प्रारम्भ देश के पूर्वी भाग बंगाल से हुआ और उस आन्दोलन का नेतृत्व राजा राममोहन राय ने किया। इसी कारण राजा राममोहन राय को भारत के नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है।[4] राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन में उदारवाद तथा बुद्धिवाद की परम्परा का सूत्रपात किया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में राजा राममोहन राय की विभिन्न क्रियाओं का स्रोत ''व्यक्ति की स्वतंत्रता'' ही थी। धर्म के क्षेत्र में मूर्ति पूजा का विरोध, समाज–सुधार के क्षेत्र में सतीप्रथा व बहु– विवाह का विरोध और राजनीतिक क्षेत्र में प्रेस की स्वतंत्रता तथा न्यायपालिका का कार्यकारिणी से पृथक्करण की माँग इत्यादि।[5] राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण ग्रन्थों, सामाजिक परम्पराओं और तात्कालिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन किया। उनका प्राचीन ग्रन्थों एवं दर्शन में विश्वास था, परन्तु अन्तिम रूप से वे मानव विवेक एवं तर्क शक्ति पर ही निर्भर करते थे। उनके अनुसार किसी भी सिद्धान्त–पाश्चात्य या प्राच्य की सत्यता की अन्तिम कसौटी मानव– विवेक ही है। उनका विश्वास था कि यदि कोई भी दर्शन, परम्परा आदि तर्क पर खरे न उतरे और वे समाज के लिए उपयोगी न हो तो मनुष्य को उन्हें त्यागने से नहीं हिचकना चाहिए।''[6] अपने इन्हीं विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए राजा राममोहन राय ने 'सर्वप्रथम 1815 ई0 में ''आत्मीय सभा'' की स्थापना की, जिसमें प्रत्येक वर्ग व धर्म के लोगों को प्रवेश की अनुमति थी। आत्मीय सभा की बैठकों में वेदों का अध्ययन एवं एकेश्वरवाद के सिद्धान्तों पर चर्चा होती थी।'[7] कालान्तर में राजा राममोहन राय ने सन् 1828 ई0 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। जिसका प्रारम्भिक उद्देश्य पूर्ण रूप से धार्मिक था। धर्म के क्षेत्र में ब्रह्म समाज ने एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिसकी तुलना 16वीं सदी के भक्ति आन्दोलन से की जाती है। ब्रह्म समाज ने धर्म एवं समाज दोनों क्षेत्रों में कार्य किया। इसके धार्मिक सिद्धान्त निम्न हैं :–

1. मूर्तिपूजा का विरोध तथा शास्त्रों के विरुद्ध बताया गया है।
2. एकेश्वरवाद में विश्वास।
3. धर्म पालन में वाह्य कर्मकाण्डों एवं अंधविश्वासों का विरोध किया।
4. पुरोहितवाद का विरोध किया।
5. ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति और आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रार्थना को आवश्यक बताया।

6. विश्वबन्धुत्व के सिद्धान्त को माना।[8]

1825 में वेदान्त कालेज की स्थापना भी की, जहाँ पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृति दोनों प्रकार की शिक्षाओं का सम्मिश्रण करने का प्रयास किया गया।[9] सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में 'ब्रह्म समाज' का योगदान सर्वाधिक सराहनीय रहा है। उस समय समाज प्रायः धर्म से जुड़ा था तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों को धार्मिक सहमति प्राप्त थी। उस समय समाज का सबसे विकृत एवं दयनीय वर्ग नारी समाज का था। स्त्रियों की दयनीय स्थिति का इतिहास भी लम्बा था। ब्रह्म समाज ने प्रथम बार पर्दा प्रथा को तोड़ने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त ब्रह्म समाज व राजा राममोहन राय का सबसे बड़ा योगदान 'सती प्रथा' का घोर विरोध एवं उसे समाप्त करने में है। सती प्रथा जिसके अन्तर्गत यदि किसी के पति की मृत्यु हो जाए तो उसके पश्चात् उसकी पत्नी को उसकी चिता के साथ जीवित जला दिया जाता था। इस अमानवीय कार्य को धर्म का चोला पहनाकर धर्माधिकारियों द्वारा महिलाओं को प्रेरित कर जबरन करवाया जाता था।

'सती प्रथा भारत में अधिकांशतः बंगाल के हुगली, नदिया एवं वर्धमान में जो कि कलकत्ता के भाग थे, यहाँ अत्यधिक प्रचलित थी, वहीं पश्चिमी भारत एवं दक्षिणी कोंकण के क्षेत्र में जबकि दक्षिण में गंजाम, मसुलीपट्टम व तंजौर के अधिकांश क्षेत्रों एवं राजपूताना क्षेत्र में मुख्य रूप से प्रचलित थी। कुल मिलाकर यह प्रथा भारत के 3/4 भाग से भी ज्यादा क्षेत्रफल में प्रचलित थी, जो भारत के सवर्ण वर्ग (ब्राह्मण एवं राजपूतों) में सर्वाधिक थी। 1815–28 के मध्य तक सती की संख्या में वृद्धि हुई जो 378 से 839 तक प्रतिवर्ष पहुँच गयी। वहीं धर्माचार्यों द्वारा इसे एक नैतिक कार्य तथा नारियों के लिए आदर्श एवं गौरवान्वित कृत बताया गया।''[10]

वास्तव में सती प्रथा के प्रचलन का मूल कारण 'सम्पत्ति का उत्तराधिकार' का विषय था। उस समय 'मिताक्षरा' एवं 'दायभाग' नामक ग्रन्थ को हिन्दू कानून के रूप में लिया जाता था। 'दायभाग' के रचयिता जीमूतवाहन एक बंगाली ब्राह्मण थे। इस ग्रन्थ का प्रभाव मुख्य रूप से बंगाल एवं असम में था। 'मिताक्षरा' की रचना दक्षिण भारत में हुई जिसके रचयिता 'विज्ञानेश्वर' थे। यह भारत के अन्य भागों में मान्यता प्राप्त थी। मिताक्षरा के अनुसार ''संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में से स्त्री, कुँवारी कन्या, बहू (विधवा भी) को निर्वाह का अधिकार था। निःसंतान पुरुष की विधवा को उसकी व्यक्तिगत जायदाद का एक हिस्सा मिल सकता था। विधवाएँ अपनी सम्पत्ति को न तो बेच सकता थी, न उपहार दे सकती थी और न ही गिरवी रख सकती थी। वहीं दायभाग के नियमानुसार – 'एक चरित्रवान विधवा निःसंतान पति के सम्पत्ति के प्रबन्ध की अधिकारी हो सकती थी, किन्तु न तो इस सम्पत्ति को बेच सकती थी, न गिरवी रख सकती थी।' ''दायभाग' व्यवस्था में व्यक्तिगत या संयुक्त सम्पत्ति का कोई विवाद नहीं था। विधवा स्त्री दोनों प्रकार की सम्पत्तियों की प्रबन्ध हो सकती थी। अतः दोनों ही हिन्दू व्यवस्थाओं में स्त्री का अपने स्त्रीधन पर पूरा अधिकार था। इस प्रकार, महिलाओं के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को समाप्त करने के लिए तथा सम्पत्ति में बंटवारे जैसी स्थिति से बचने के लिए समाज में सती प्रथा को बढ़ावा दिया गया, जिसका कोई भी धार्मिक महत्व अथवा उल्लेख नहीं था।''[11]

सती प्रथा को बन्द करने में ब्रह्म समाज एवं राजा राममोहन राय का योगदान महत्वपूर्ण था। यद्यपि राजा राममोहन राय से पूर्व भी इस प्रथा को समाप्त करने के कुछ प्रयास हुए। राजा राममोहन राय ने सर्वप्रथम 1815 ई0 में बंगाली भाषा में सती पर हमला बोलते हुए एक लेख लिखा। जब लार्ड विलियम बेंटिक वाइसराय होकर भारत आए तो उन्होंने सती निर्मूलन एक्ट पारित किया। बेंटिक दृढ़ निश्चयी तथा सुधारवादी स्वभाव के व्यक्ति थे। तथापि ब्रिटिश सरकार दो विरोधी मतों के मध्य उलझी हुई थी, एक ओर तो मानवता का प्रश्न था, तो इस क्रूर प्रथा को रोकने हेतु बाध्य कर रहा था, दूसरी ओर पवित्र धार्मिक संस्कारों के खण्डन का प्रश्न था। राजा राममोहन राय ने ब्रिटिश सरकार को इस उलझन से निकालने में अनेक पत्रों का सम्पादन किया। प्रथम पत्र 1818 ई0 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने सती प्रथा को धर्मशास्त्रों के विरुद्ध सिद्ध करने की चेष्टा की। 1819 ई0 में प्रकाशित द्वितीय पत्र में उन्होंने अपने तर्कों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि सती प्रथा के पीछे कोई धार्मिक पक्ष न होकर अपितु विधवा नारी के सम्बन्धियों का व्यक्तिगत स्वार्थ है, जो आजीवन विधवा के भार को संभालने की इच्छा नहीं रखते। अतः यहाँ मानवता और धर्म का कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार राजा राममोहन राय ने अनेक तर्कों के साथ यह सिद्ध किया कि सती प्रथा का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसे अवैध घोषित करने तथा इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने से हिन्दू धर्म में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा। उनके अथक प्रयासों के परिणामस्वरुप 'ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने 4 दिसम्बर 1829 ई0 को सती अधिनियम XVII पारित किया, जिसके अन्तर्गत यह प्रावधान था कि किसी हिन्दू विधवा स्त्री को सती बनाने, उसे जलाने या जिन्दा दफन करने की कोशिश गैरकानूनी तथा आपराधिक अदालतों द्वारा दण्डनीय है।''[12]

सती प्रथा के अतिरिक्त राजा राममोहन राय ने विधवा विवाह हेतु भी अनेक प्रयत्न किया। ब्रह्म समाज के अनेक सदस्यों ने विधवाओं से पुनः विवाह कर व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत किया। इसके साथ ही राजा राममोहन राय ने नारी शिक्षा एवं स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार की भी बात की। राजा राममोहन राय बहु–विवाह के घोर विरोधी थी। अतएव यह अक्षरशः सत्य है कि राजा राममोहन राय भारत में नवयुग के जन्मदाता हैं। उन्होंने अपने प्रयासों से भारतीय समाज में एक नयी चेतना का संचार किया। उनके द्वारा समाज सुधार की दिशा में किये गये कार्यों विशेषकर नारियों की स्थिति में सुधार लाने हेतु किये गये कार्यों का भारतीय समाज सदैव ऋणी रहेगा। मिस सोफिया डाउसन कौलेट ने अपनी प्रख्यात पुस्तक "Life and Letters of Raja Ram Mohan Roy" में लिखा है कि ''धर्म, राजनीति, साहित्य एवं लोक कल्याण सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में राजा राममोहन राय ने जो कार्य किया है, वह भारतीयों द्वारा किये गये सुधार कार्यों के इतिहास में सर्वाधिक प्रभावकारी एवं अग्रणीय माना जायेगा।''[13]

सन् 1833 ई0 में राजा राममोहन राय की असमय मृत्यु के पश्चात् देवेन्द्रनाथ टैगेर ने 1843 ई0 में ब्रह्म समाज का कार्यभार सम्भाला। 'देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज का पुनः गठन किया तथा समाज में शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु 'तत्वबोधिनी पाठशाला' की स्थापना की साथ ही तत्वबोधिनी सभा का भी संगठन किया, जिसमें दर्शन एवं धर्म की परिचर्चा होती थी। उन्होंने बंगला भाषा में तत्वबोधिनी पत्रिका का प्रकाशन किया जिससे भारत के अतीत के सुव्यवस्थित अध्ययन को भरपूर प्रोत्साहन मिला।''[14]

सन् 1850 ई0 से 1856 ई0 तक का काल ब्रह्म समाज के इतिहास में अनेक नवीन विचारों के समावेश का काल था। उस समय ब्रह्म समाज के कुछ सदस्यों ने क्रान्तिकारी विचारों का प्रतिपादन करते हुए नारी शिक्षा को बल दिया, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, बहु–विवाह का निषेध कर ब्रह्म सिद्धान्तों को अधिक बुद्धिवादी बनाया तथा समाज में इन नियमों का पालन कठोरता से करने पर बल दिया।'[15] इस वर्ग के सदस्यों में सबसे अधिक उल्लेखनीय

व्यक्तित्व केशवचन्द्र सेन का था, जिन्होंने 1850 ई0 में ब्रह्म समाज की सदस्यता ग्रहण की। 1862 ई0 में उन्हें ब्रह्म समाज में 'आचार्य' पद प्राप्त हुआ। आचार्य केशवचन्द्र सेन के प्रभाव में समाज ने हिन्दू धर्म के सर्वोत्तम विश्वासों एवं नैतिक आचरणों को बनाये रखा। उनके आचार्यत्व में ब्रह्म समाज बहुत लोकप्रिय रहा तथा इसकी शाखाएँ संयुक्त प्रान्त, पंजाब और मद्रास में खोली गयी। केशवचन्द्र सेन एक क्रान्तिकारी विचारक एवं नयी पीढ़ी के सुधारक थे। अतः उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज में एक नवीन जीवन व स्फूर्ति आयी। सन् 1860 ई0 में उन्होंने 'संगत सभा' की स्थापना की, जहाँ हिन्दू धर्म के विचारों का आलोचनात्मक तर्क–वितर्क होता था साथ ही अन्य धर्मों के (ईसाई, इस्लाम, पारसी एवं चीनी) धर्म ग्रन्थों का पाठ होता था। उन्होंने 1861 ई0 'कलकत्ता कालेज' की स्थापना की तथा 'इण्डियन मिरर' नामक पत्रिका भी निकाली। वह काफी हद तक पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक भी थे। उनके इस प्रकार के विचारों से अनुदारवादी व हिन्दू समर्थक देवेन्द्रनाथ के मध्य मतभेद उत्पन्न हुआ तत्पश्चात् 1865 ई0 में केशवचन्द्र मूल ब्रह्म समाज से अलग होकर 'आदि ब्रह्म समाज' की स्थापना की जिसकी सदस्यता स्त्री व पुरुष दोनों के लिए थी।

केशवचन्द्र सेन ने नारी जाति के उत्थान में पूर्ण ऊर्जा एवं शक्ति से काम किया। वे नारी स्वतंत्रता व शिक्षा के बड़े समर्थक थे। उनका विचार था कि 'कोई भी देश जिसका स्त्री वर्ग पिछड़ा हुआ है वह प्रगति नहीं कर सकता। सर्वप्रथम उन्होंने नारियों में जागृति लाने के लिए शिक्षा की महत्ता को स्वीकार किया, जिसके लिए उन्होंने 'अन्तपुर स्त्री शिक्षा सभा' की स्थापना की जो नारी शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें इस योग्य बनाती थी कि वे व्यक्तिगत रूप से घरों में जाकर स्त्रियों को शिक्षित करें।'' कालान्तर में अनेक पाठशालाएँ भी खोली गयीं। सन् 1882 ई0 में केशवचन्द्र सेन ने नारी शिक्षा के सम्बन्ध में एक नयी योजना बनायी तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट के समक्ष उसको रखा। साथ ही 'ब्रह्मबोधिनी' एवं 'परिचारिका' नामक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई, जिनका उद्देश्य विशेष रूप से नारियों के मध्य शिक्षा का प्रचार करना था।[16]

इस प्रकार ब्रह्म समाज ने भारतीय पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धर्म एवं समाज सुधार के क्षेत्र में इस संगठन ने क्रान्तिकारी कदम उठाये, जिसका समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा। 'ब्रह्म समाज की विचारधारा महाराष्ट्र में भी फैली तथा 1849 ई0 में 'परमहंस मण्डली' की स्थापना हुई। केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से बम्बई में डॉ0 आत्माराम पाण्डुरंग के नेतृत्व में 1867 ई0 में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख उद्देश्य जातिप्रथा का विरोध, पुरुष व स्त्री विवाह की आयु का बढ़ाना, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना था। बाद में प्रार्थना समाज से महादेव गोविन्द रानाडे एवं एम0जी0 चन्द्रावरकर जुड़े, जिससे प्रार्थना समाज को नई गति मिली।[17]

19वीं सदी में सती प्रथा एवं शिशु हत्या को रोकने मात्र से नारियों की स्थिति नहीं सुधरी अपितु उसके विधवा विवाह एवं विवाह योग्य आयु बढ़ाने जैसे सकारात्मक कार्य भी किये गये। भारत में विधवा पुनर्विवाह को आरम्भ करने का प्रमुख श्रेय संस्कृत कालेज कलकत्ता के आचार्य श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को था। उन्होंने पुराने संस्कृत और वैदिक अभिलेखों से यह सिद्ध किया कि विधवा विवाह वेद सम्मत है। इनके प्रयासों के फलस्वरुप कम्पनी सरकार ने 'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 ई0 अधिनियम XV के तहत् विधवा विवाह को वैध मान लिया तथा उस विवाह से उत्पन्न संतान को वैध घोषित किया गया।''[18]

उत्तर भारत के साथ–साथ दक्षिण भारत में भी समाज सुधार चल रहा था। सन् 1871 ई0 में मद्रास में एक विधवा पुनर्विवाह एसोसिएशन बना। वहीं 1878 ई0 में वीरेसलिंगम् ने ''राजामुंद्री समाज सुधार एसोसिएशन'' की स्थापना की। जिसने विधवा पुनर्विवाह पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।[19] हालाँकि भारत में प्राचीन काल में विधवा विवाह प्रथा प्रचलित थी, किन्तु कालान्तर में संकीर्ण मानसिकता से ग्रसित रुढ़िवादियों ने सम्पत्ति विभाजन अथवा सम्पत्ति के अधिकार से महिलाओं को वंचित करने हेतु विधवा पुनर्विवाह को प्रतिबन्धित कर दिया गया तथा विधवाओं हेतु कठोर यातना से युक्त एवं सांसारिक सुख–सुविधाओं से विरक्त नीरस जीवन नियमावली बनाकर विधवाओं को समाज की मुख्य धारा से अलग रखा तथा समाज में हेय दृष्टि से देखा गया।

19वीं सदी के भारत में उदारवाद के साथ–साथ पाश्चात्य विरोधी जिस नवीन आन्दोलन का आविर्भाव हुआ उन्होंने अपनी समकालीन परिस्थितियों के प्रकाश में अतीत की पुनर्व्याख्या की। इस आन्दोलन में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को तिरस्कृत करते हुए समाज के प्राचीन मूल्यों पर बल दिया। उनका महान उद्देश्य भारत की जनता के हृदय में जाति के नये अभिमान को उत्पन्न करना था, जिससे देश में राष्ट्रीय भावना जागृत हुई। इस आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' थे, जिन्होंने भारतीय पुनर्जागरण के द्वितीय चरण का प्रतिनिधित्व किया। स्वामी दयानन्द के समाज सुधार का उद्देश्य भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एकीकृत करना था।''[20] उनके अनुसार आर्य धर्म ही देश का समान धर्म होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में दयानन्द ने 1875 ई0 में आर्य समाज की स्थापना की। जहाँ एक ओर ब्रह्म समाज के अनुयायी पाश्चात्य शिक्षा की उपज एवं पाश्चात्य सभ्यता एवं विचारों के समर्थक थे, वहीं इसके ठीक विपरीत आर्य समाज पूर्ण रूप से एक हिन्दू संस्था थी तथा इन्होंने वैदिक धर्म एवं वैदिक ग्रन्थों को महत्ता दी। सामाजिक क्षेत्र में दयानन्द ने अस्पृश्यता, जाति, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा आदि पर कुठाराघात किया। भारत के सामाजिक इतिहास में दयानन्द सरस्वती एकमात्र ऐसे सुधारक थे, जिन्होंने शूद्र तथा स्त्री को वेद पढ़ने, ऊँची शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने के लिए प्रेरित कर रहे थे।[21] भारतीय पुनर्जागरण में सवामी दयानन्द एक ऐसे विचारक हैं, जिन्होंने स्त्रियों के उत्थान हेतु संस्कृति सापेक्ष दृष्टिकोण एवं समग्र बोध के आधार पर भारतीय विचार एवं परम्परा की पुनर्व्याख्या करने का प्रयास किया।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सनातन मत की स्थापना एवं तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न अन्धविश्वासों व रुढ़ियों आदि के खण्डन के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की। महर्षि दयानन्द के स्त्री सम्बन्धी विचारों का उल्लेख इसी ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ में उन्होंने कहा है कि ईश्वरत्व में पुरुष एवं स्त्री एक–दूसरे के समान रूप में हैं। साथ ही माता का स्थान पिता एवं आचार्य से ऊँचा है।''[22] महर्षि दयानन्द स्त्री–पुरुष दोनों के शिक्षा के समर्थक थे। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ''जो माता–पिता अपने पुत्र अथवा पुत्रियों को 5वें अथवा 8वें वर्ष से आगे विद्यालय न भेजे, उनके लिए राज्य की ओर से दण्ड की व्यवस्था की जाय। इसके अतिरिक्त दयानन्द ने स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार को आवश्यक बताया। गुरुकुल में 24 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का निर्देश दिया। उन्होंने स्त्री–पुरुष दोनों के लिए समान शिक्षा की व्यवस्था दी है, जिसमें व्याकरण, निरुक्त, विदुरनीति, उपनिषद्, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अथर्ववेद आदि सम्मिलित है।[23] महर्षि दयानन्द ने बाल–विवाह एवं बहु–विवाह को गलत माना है तथा विवाह योग्य आयु लड़कों के लिए 25 वर्ष एवं लड़कियों के लिए 16 वर्ष

निर्धारित किया। आर्य समाज ने बाल–विवाह जैसी अप्राकृतिक प्रथा को समाप्त करने हेतु जबरदस्त अभियान चलाया।[24] इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने भारतीय समाज में शिक्षा एवं अधिकारों के द्वारा स्त्री व पुरुष के मध्य समानता की उस भावना को जागृत किया जो वर्तमान में संविधान में परिलक्षित है।

भारतीय नारी को उनकी दयनीय स्थिति से उबारने एवं समानता दिलाने के प्रयासों की कड़ी में अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम सामाजिक क्रान्ति के प्रणेता महात्मना ज्योतिराव फुले का है, जिन्होंने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। ईसाई मिशनरी द्वारा शिक्षित ज्योतिबा फुले छात्र जीवन से ही समाज सेवा व लोक कल्याण के प्रति आकृष्ट हुए। 'जिस सामाजिक व्यवस्था को बदलने से विदेशी सरकार भी डरती थी, उसे बदलने का अदम्य साहस कर दिखाया था, ज्योतिबा फुले ने।[25] फुले के लिए साक्षरता (ज्ञान) और विशेषकर अंग्रेजी शिक्षा रुढ़िवादी प्रभुत्व को मूलरूप से दूर करने में सर्वाधिक उपयोगी थी। उनका मानना था कि मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को मूल रूप से बदलने में साक्षरता न केवल एक सशक्त माध्यम है अपितु इससे लिंग समानता भी आयेगी।[26] 19वीं सदी के समाज सुधारकों में ज्योतिबा फुले ऐसे प्रथम सुधारक थे, जिन्होंने गम्भीरतापूर्वक महिला साक्षरता का बीड़ा उठाया तथा अपने प्रयासों से 1848 ई0 में कन्या पाठशाला की स्थापना की। 'एक निम्न वर्ग के व्यक्ति के द्वारा कन्या पाठशाला आरम्भ करना उस समय की आश्चर्यजनक घटना थी, जिसका खूब विरोध भी हुआ। सनातनियों के दबाव से ज्योतिबा फुले के पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया, फिर भी फुले ने धैर्य नहीं खोया तथा साथ ही अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को भी शिक्षित किया। पति–पत्नी दोनों मिलकर पाठशाला में अध्यापन कार्य करते थे। सावित्री बाई फुले भारत में स्त्री शिक्षा हेतु कार्य करने वाली प्रथम नारी थी। इसीलिए वे भारत की प्रथम अध्यापिका भी मानी जाती हैं।''[27]

इस प्रकार भारत के हजारों वर्षों के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब समाज के निम्न वर्ग की कन्याओं के लिए शिक्षा के द्वार खोले गये थे। फुले दम्पत्ति के इस अद्‌भुत कार्य के कारण ही इन्हें आधुनिक भारत के सामाजिक क्रान्ति के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। ज्योतिबा फुले ने पाठशाला के साथ ही तरुण कन्याओं के लिए अलग विद्यालय खोले तथा इसमें निर्धन छात्राओं के लिए पुस्तकालय की स्थापना भी की गयी। इसके अतिरिक्त फुले ने विधवा विवाह को भी प्रोत्साहित किया। 'ज्योतिबा फुले ने अपने विचारों को व्यवहार में लागू किया, इस हेतु उन्होंने 1873 ई0 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इस संस्था ने कन्या शिक्षा, विधवा विवाह एवं नशाखोरी के विरुद्ध कार्य किया। फुले ने विचारों एवं कार्यों के द्वारा तत्कालीन रुढ़िवादी समाज, धर्म धर्मग्रन्थों की प्रथाओं एवं मूल्यों की तर्कपूर्ण एवं सशक्त सामाजिक समीक्षा प्रस्तुत की।''[28]

भारत के समाज सुधारकों के अतिरिक्त पश्चिम देशों से आये कुछ सुधारकों ने भी भारतीय नारी के उत्थान हेतु अनेक कार्य किये, जिसमें व्यक्तिगत रूप से ऐनी बेसेन्ट का योगदान महत्वपूर्ण है। ऐनी बेसेण्ट 1882 ई0 में थियोसोफिकल सोसाइटी से जुड़ी तथा 1891 में भारत आयी। 'थियोसोफिकल सोसाइटी के तीन मुख्य सिद्धान्त :–

1. जाति, धर्म, लिंग, रंग आदि का भेद न मानते हुए विश्व बन्धुत्व की भावना रखना;
2. प्राचीन धर्म, दर्शन तथा विज्ञान की प्रगति करना;
3. प्रकृति के दुर्लभ नियमों के अनुसार जीवन निर्वाह करना।

थियोसोफी के ये सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुरूप थे।[29] इन सिद्धान्तों के द्वारा थियोसोफी सोसाइटी ने भारतीयों में धार्मिक उद्‌बोधन के साथ–साथ नारी वर्ग में भी चेतना उत्पन्न करने का कार्य किया। उन्होंने बाल– विवाह, पर्दा–प्रथा जैसी प्रथाओं का घोर विरोध किया तथा उन्होंने बाल–विवाह के परिणामों की ओर इंगित करते हुए कहा कि ''भारत का भविष्य बाल–विवाह को रोकने पर निर्भर है। जब तक भारत में यह प्रथा रहेगी, तब तक इसके अनेक दुष्परिणाम भी विद्यमान रहेंगे। समय से पहले वृद्धावस्था आयेगी, मानसिक रोग उत्पन्न होंगे, शक्ति का ह्रास होगा। यह सभी स्थिति भारत में उपस्थित है तथा भारत को शक्तिशाली देशों के समक्ष खड़ा करने में बाधक है।''

ऐनी बेसेण्ट ने नारी शिक्षा पर भी जोर दिया तथा 1898 ई0 में बनारस में 'सेण्ट्रल हिन्दू कालेज' की स्थापना की। जो आगे चलकर 1916 ई0 में ''बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय'' बन गया। ऐनी बेसेण्ट ने भारत की नारियों को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर देने की जोरदार वकालत की।[30] बेसेण्ट की शिक्षा संस्थापना के प्रति उद्‌देश्य था कि – जाति व्यवस्था, बाल–विवाह, बहु–विवाह आदि का खण्डन हो तथा विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, शोषित वर्ग एवं भारतीय नारी के उत्थान से सम्बन्धित था। ऐनी बेसेण्ट का मानना था कि स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा तथा अन्याय का विरोध करने का अधिकार सभी को प्राप्त होना चाहिए। इसे लैंगिक अधिकार का स्वरुप बनाने के बजाय मानवीय अधिकार के रूप में होने चाहिए। स्त्रियों के इन अधिकारों को नकारने का अर्थ है – मानवता को नकारना अथवा यह मानने से इंकार करना कि स्त्रियाँ मानवता का एक अंग है। यदि स्त्रियों के इन अधिकारों को नकारा जाता है, तो स्त्रियों के अधिकारों की बात करना बेमानी है।[31] ऐनी बेसेण्ट का जीवन कर्म पर आधारित था तथा उनकी चरित्रगत विशेषता उनकी निष्ठा थी। ऐनी बेसेण्ट ने अपने जीवन में भारतीयता को आत्मसात् कर लिया था।

इस प्रकार अनेक समाज सुधारकों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी। हालाँकि 19वीं सदी में हुए इन सुधार आन्दोलनों में मुख्य रूप से समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रुढ़ियों को समाप्त किया गया तथा शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया, किन्तु महिलाओं के लिए उनके अधिकारों की बात नहीं की गयी न ही उन्हें सामाजिक व आर्थिक अधिकार दिये गये। उस समय प्रायः सभी बुद्धिजीवियों में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने की उत्कृष्ट लालसा दिखाई पड़ती थी। पाश्चात्य शिक्षा में भारतीयों की बौद्धिक चेतना को इस प्रकार जागृत कर दिया कि भारतीय समाज का पुनरावलोकन अवश्यम्भावी हो गया। एक ओर पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित विद्वान थे जिसमें राजा राममोहन राय अग्रणी थे तो दूसरी ओर विशुद्ध भारतीय संस्कृति के आलोक में समाज–सुधार करने वालों की भी एक विद्वत्व मण्डली थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती को इस श्रेणी का अग्रणी विद्वान माना जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दयानन्द सरस्वती ने सनातन धर्म पर आधारित सुधार कार्यक्रम का सूत्रपात किया, जो भारतीयों के जनमानस पर अधिक प्रभाव डालने में सफल रहा। यह विशुद्ध भारतीय पुनर्जागरण था जिसमें वैदिक काल से चली आ रही सामाजिक विचारधाराओं को कुरीतियों से मुक्त करके विशुद्ध रूप प्रदान किया। इसके परिणामस्वरुप पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय समाज पर सीमित सन्दर्भ में ही प्रभाव स्थापित हो सका। यह भारतीयता की अक्षुण्ण शक्ति का परिचायक था एवं भारतीय संस्कृति का परिष्कारक एवं संरक्षक था।

## सन्दर्भ ग्रन्थ


1. Pratima Asthana. 'Women's Movement in India', Vikas Publishing House, New Delhi, 1974, 5.
2. रामधारी सिंह दिनकरः संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य

अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ0 414

3. वही, पृ0 416
4. Dr. Tapan Rai Choudhary, Dr. S. Bhattacharya, Dr. Uma Das Gupta. The Cultural Heritage of India, Vol. VIII [The Making of Modern India (1765-1947)], Ramkrishna Math and Ramkrishna Mission, Belur Math, Kolkata, 2013, 91.
5. Geraldine Forbes. The New Cambridge History of India, (Women in Modern India), Cambridge University Press. 1996; 4(2):10.
6. रामलखन शुक्ल : आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2010, पृ0 345–46
7. Dr. Tapan Rai Choudhary, Dr. S Bhattacharya, Dr. Uma Das Gupta. The Cultural Heritage of India, Vol. VIII (The Making of Modern India (1765-1947], Ramkrishna Math and Ramkrishna Mission, Belur Math, Kolkata, 2013, 93.
8. लक्ष्मण प्रसाद माथुरः आधुनिक भारत का इतिहास (1757–1947 ई0), जैन पुस्तक मन्दिर, जयपुर, 1989, पृ0 290
9. Mazumdar RC. The History & Culture of the Indian People, British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. II, Bhartiya Vidya Bhawan, New Delhi, 1993, p. 98
10. Ed. PN Chopra. The Gazetteer of India, Indian Union, Vol. II (History and Culture), Gazetteers Unit, Dept. of Culture, Ministry of Edu. & Social Welfare, Govt. of India, 1973, 638.
11. डॉ0 गोपा जोशी : भारत में स्त्री असमानता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2006, पृ0 86
12. Ed. P.N. Chopra. The Gazetteer of India, Indian Union, Vol. II (History and Culture), Gazetteers Unit, Dept. of Culture, Ministry of Edu. & Social Welfare, Govt. of India, 1973, 639.
13. लक्ष्मण प्रसाद माथुर : आधुनिक भारत का इतिहास (1757–1947) ख्जैन पुस्तक मन्दिर, जयपुर, 1989, पृ0 293
14. Mazumdar RC. The History & Culture of the Indian People, British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. II, Bhartiya Vidya Bhawan, New Delhi, 1993, 101.
15. वही, पृ0 102
16. वही, पृ0 105
17. वही, पृ0 106
18. Sumit Sarkar, Tanika Sarkar. Women and Social Reform in India, Permanent Black Publishers, Ranikhet, 2007; 1:116.
19. Sumit Sarkar, Tanika Sarkar. Women and Social Reform in India, Vol. II, Indiana University Press, 2008, 342.
20. Ed. PN Chopra. The Gazetteer of India, Indian Union, (History and Culture), Gazetteers Unit, Dept. of Culture, Ministry of Edu. & Social Welfare, Govt. of India, 1973; 2:114.
21. Mazumdar RC. The History & Culture of the Indian People, British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. II, Bhartiya Vidya Bhawan, New Delhi, 1993, 108.
22. राधा कुमारः स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 52–53 में उद्धृत लाला लाजपत राय की पुस्तक ‘।भ्पेजवतल व जीम ।तलं ैउंरष का अंश
23. राधा कुमारः स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 53
24. Ed. PN. Chopra. The Gazetteer of India, Indian Union, (History and Culture), Gazetteers Unit, Dept. of Culture, Ministry of Edu. & Social Welfare, Govt. of India, 1973; 2:653.
25. डॉ0 कुसुम मेघवाल : भारतीय नारी के उद्धारक – डॉ0 बी0आर0 आम्बेडकर, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 71
26. IGNOU नोट्स – आधुनिक भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2008, पृ0 64
27. डॉ0 कुसुम मेघवाल : भारतीय नारी के उद्धारक – डॉ0 बी0आर0 आम्बेडकर, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 73
28. IGNOU नोट्स – आधुनिक भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2008, पृ0 65
29. Ed. PN. Chopra The Gazetteer of India, Indian Union, (History and Culture), Gazetteers Unit, Dept. of Culture, Ministry of Edu. & Social Welfare, Govt. of India, 1973, 2:654.
30. वही, पृ0 654–55
31. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 107